Review of Literature
ISSN: 2347-2723 Impact Factor : 2.0260(UIF) Volume - 4 | Issue - 5 | December - 2016

''दलित और स्त्री विमर्श की सफल साहित्यकारा - सुशीला टाकभौरे''

प्रा. झाकीरहुसेन मुलाणी
विठ्ठलराव शिंदे आर्टस कॉलेज, टेंभुर्णी ता. माढा, जि. सोलापूर ।

प्रस्तावना :
आझादी का मतलब अब समझ में आने लगा है, जिसे मनुस्मृति या सनातनी शुद्र मानते थे, वह आजकल बोलने और लिखने लगे है। मराठी और हिन्दी भाषा में एक साथ कुछ विचारधाराएँ नये शिर से उभरने लगी थी। उसमें दलित विमर्श, स्त्री विमर्श, आदिवासी विमर्श एवं घुमंतु विमर्श आदि आ जाते हैं । इनके मूल में समाजशास्त्रियों की दृष्टि से कार्ल मार्क्स, डॉ. आम्बेडकर और महाराष्ट्र के श्रेष्ठ समाज सुधारक फुले (पति और पत्नी) प्रेरक रूप में रहे हैं। मानवतावादी विचारों के प्रवर्तक यह विद्वान है, जिन्होंने परंपरावादी विचारों का कडा विरोध किया है । इनका विरोध मनुस्मृति और उससे उभरे तत्वों को रहा है। १९८० के बाद हिन्दी साहित्य समृध्दी के नये पायदान पर कदम रखता है, क्योंकि शिक्षा और लेखन किसी एक की जागीर नहीं है। अपितु प्रतिभा के साथ अनुभूति का संसार जिसके पास है, वह सफल साहित्यकार एवं विचारक है।
सुशीला टाकभौरे की कविता एक नहीं दो विमर्श का सफल मेल है। जिसमे स्त्री और दिलत विमर्श साथ-साथ चलता है, वह साहित्यकारा सुशीला टाकभौर है। टाकभौरे जी को स्त्री और दलित होने का दु:ख नही है अतितु पुरूषसत्ताक प्रवृति और

भेदभाववादी समाज रचना के प्रति चिड है। उनकी कविता दोहरे पायदान पर खडी होकर वर्ण-व्यवस्था, विसंगतियों, दलित जीवन का त्रास, छुआछूत, दलितबोध, भूख, गरीबी पर आदि विषयों पर आग बरसाती है। वह कविता, कहानी, आत्मकथा, विचारात्मक लेख आदि साहित्यिक विधाओं में सफल रही है। उनको आत्मकथा और कहानी लेखन में जितनी सफलता मिली है, शायद उतनी कविता क्षेत्र में नहीं। आत्मभिव्यंजना बेबाक देना यह भी अपने आप में सफलता नहीं तो और क्या है?
उनके चार कविता संग्रह प्रकाशित है, 'स्वाति बूंद और खारे मोती ' (१९९५) ' यह तुम भी जानों' (१९९४) 'तुमने उसे कब पहचाना' (१९९५) 'हमारे हिस्से का सूरज' (२००५) जिसमें दलित और स्त्री के लिए सामाजिक न्याय की माँग है।

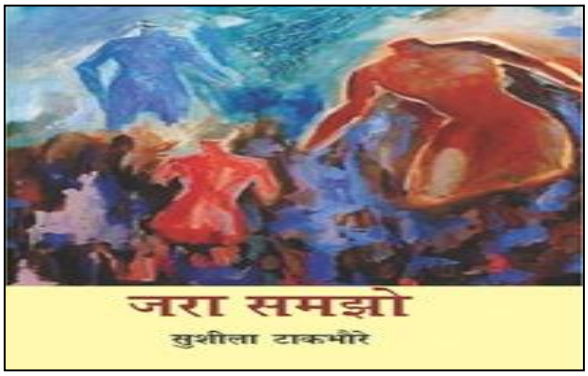

कवयित्री दलित होने के साथ स्त्री भी है, दोनों स्तर पर उसका शोषण युग-युग से हो रहा है। उसकी स्वाभाविक प्रतिक्रिया मानों उनकी कविता एवं साहित्य है। उनका साहित्य अवहेलना, पीडा, अपमान से रचा गया है। सामाजिक न्याय की माँग शब्द-शब्द में प्राप्त होती है, जैसे ---

''दुख हमे, सुख उन्हें
कैसी यह विडंबना.....। ''

सवर्ण जातियों के प्रति उनकी कविता में आक्रोश है। साहित्यकारा मानती है कि जिस अभिशाप को दलितों ने भोगा, वह नियति नहीं है, बल्कि उनके साथ की गयी सोची-समझी साजिश है। दलित शिक्षा और सुविधाओं के आभाव में गाँव और शहरों से कटा हुआ था। वर्तमान में जाति के नाम पर पग-पग पर होनेवाला अपमान दलितों के जीवन की सच्चाई है। दलितों को सवर्णो व्दारा फेंके हुये टुकडे नहीं चाहिए, बल्कि रोटी से बढकर सामाजिक न्याय की माँग उनकी कविता करती है। अपमान और पीडा के अनेक चिह्नों को झेलनेवाला दलित दर्द देनेवाले साहनुभुति की अपेक्षा पर्दे हटाकर आर-पार की लडई लडना चाहता है। सुशीला टाकभौरे की कविता सौन्दर्य का रसपान नहीं करती अपितु वास्तव दर्शन का सैलाब दिखाती है। दलित भी पहले इन्सान है, वह सवर्णो को कटघरे में खडा करता हुआ पुछता है ॻ
''मानव सभ्यता संस्कृति का
इतिहास क्या है?

भारतीय संस्कृति का आधार
क्या है?
क्यों किया अब तक
हम पर अत्याचार ? '' (हम दलित यह तुम भी जानों)

गुलामी का जीवन जीनेवाले पहली बार जाना कि कोई हमारा शुभचिंतक है जो सदियों से विषमता के सागर में गोते खा रहे दलितो की करूणा पुकार, उनका दुखदर्द, पीडा, अपमान, वंचना तथा गुलामी से मुक्त करने की कोशिश कर रहा है। सुशीला टाकभौरे जी की 'दलितो के मसिहा' कविता में सामाजिक विषमतापुर्ण व्यवस्था का विरोध करती है - जैसे,

''दलित बहुजन
ढूँढ रहे थे वह छांह
पीडाओं से मुक्ति के लिए,
विश्वास कर सकें कि
दुनिया हमारी भी है
हमे भी जीने का हक है।''

सुशीला टाकभौरे घुमा-फिराकर कहने के बाजाय सीधी बात में विश्वास करती है। कविता केवल उनके लिए जरिया है, मानवतावादी विचारों की अभिव्यंजना के लिए। आज का दलित साहित्यकार मानवता का पुजारी है। समाज वर्ग विहीन हो, शोषण मुक्त हो, जाति रहित हो, यह मार्क्स का विचार दलित कविता में सर्वत्र प्राप्त होता है। दलित कवि संघर्ष करने में विश्वास करता है। दलितों ने जो भोगा है उसका आक्रोश दलित साहित्य में है। मिलनेवाली गालियॉ, अपशब्द, हीन भावनाओं ने उनके भितर के इन्सान को जगाया और संघर्ष करना सीखाया है। सुशीला टाकभौरे के शब्दों में -

''देकर कटु-अनुभूमतियाँ
अपशब्द, गालियॉ
छोडकर तन-मन पर
व्यंग्य बाणों के निशान
हो जाते हो हर्षित
क्या जानो तुम क्या गुजरती है।''

अत: स्पष्ट है कि सुशीला टाकभौरे जी की कविता दलितों के न्याय और सामाजिक सम्मान की प्रतिष्ठा करती है। उन्होंने केवल दलितों पर ही नहीं लिखा, बल्कि दलितों के घरों में जिन्दगी व्यतित करनेवाली स्त्री पर भी लिखा है। 'ओ वाल्मीकि', 'सुनो विक्रम', 'धृतराष्ट ने कहा' 'तुमने कब पहचाना', 'विद्रोहिणी ',आदि कविताएँ दलित स्त्रियों से सम्बान्धित हैं। तुम ने कब पहचाना कविता में पति से हिसाब पुछनेवाली स्त्री देखने मिलती है - जैसे -

''साथी का दम भरनेवाले
स्वामी
तुमने उसे कब पहचाना?
क्यों कहते हो नारी को
मानव समाज का गहना।''

सुशीला टाकभौरे जी की कविता स्त्री अस्तित्व की कविता है। वह चाहती है स्त्री के लिए बनाये सभी बन्धनों को तोडकर वह आगे बढे, स्त्री केवल सजाने के लिए नहीं है, अपितु वह भी एक जिन्दा व्यक्तित्व है। माता- पिता जन्म देकर घरों में बन्द कर देते है तो परंपराये आपाहिज बनाती है। 'विद्रोहिणी' कविता की चंद काव्य पंक्तियाँ सच्चाई की अभिव्यक्ति करती है-

''माँ-बाप ने पैदा किया था
गूँगा।
परिवेश ने लंगडा बना दिया।''

कवयित्री पिडीत नारी के संदर्भ में संवेदना व्यक्त करती है। सदियों से होते जुल्म की कहानी वह कहती है। उनका आरोप है कि पुरूषों ने स्त्रियों को दलित बना दिया है। उसकी श्रध्दा, आस्था और त्यागमय जीवन को संशय की नजर से देखा जा रहा है। हजारों सवाल उठाने के बाद भी पुरूष को मौन देखकर वह खीझ जाती है। उसका विद्रोह आसमान को छूता हुआ हिसाब पूछता है। जैसे ---

''मगर तूम
कभी जवाब नहीं देते
हमारे प्रश्नों का।
हमे नगण्य मानते हो
या चाहते हो
परंपरा चलती रहे
उत्तर की हताशा में।'' (हमारे हिस्से का सूरज)

साहित्यकारा दलित है, अपनी जाति की स्त्रियों को आज भी (भंगी) काम करते हुए देखकर उन्हें दुख होता है, उनके प्रति संवेदना व्यक्त करती है ----

''मैं
सवर्णो की बस्ती में
....
तभी दिखाई दी सडक पर
हाथ में झाडू लिए.
सफाईवाली
मैं आपने आप धाडा से
आँधे मुह सडक पर गिरगई।''

'मेरा अस्तित्व' नामक यह कविता 'हमारे हिस्से का सूरज' कविता संग्रह की है। जिसमें कवयित्री स्वंय के लिए नहीं अपितु उसकी जाति के हर स्त्री के लिए संवेदनाव्यक्त करती है। वह अपने आपको उन्हीं स्त्रियों में बर्बरता के साथ देखती है। पुरूष हमेशा स्त्रियों को डरा धमकाकर काबू में रखना चाहती है। स्त्री कोई जानवर नहीं है। पुरूषों के लिए स्त्री चाहिए वह भी सुन्दर और जुबाँ न खोलनेवाली, जैसे ----

''माँ बहने
दूसरों की गुलामी करें,
बदले में पाये
झूठन और उतरना
सदा सिर झुका रहें।''

विपरित स्थितियों का सामना नारी युग-युग से कर रही है। उनके प्रति पुरूषों के मन में कोई संवेदना नहीं हैं। सुशीला टाकभोरे युग-युग से प्रताडित स्त्री को उकसाती है।

निष्कर्ष :-

अन्ततः सुशीला टाकभोरे की कविता एक साथ दो-दो भूमिकाओं को निभाती है। वह दलित विमर्श और स्त्री विमर्श की चर्चा अपने साहित्य में करती है। उनकी कविताएँ सीधी, सरल और सहज शैली में लिखी है। सामान्य पाठकों के दिलो-दिमाग को जरूर झकझोरती है। सुशील टाकभौरे दलित होने के नाते दलितों की पैरवी करती है तो दूसरी ओर स्त्री होने के नाते उसके आस्मिता की बात करती है। दोहरे पायदान पर खडी कवयित्री आत्माभिव्यक्ति में सफल हुई है। उसकी कविता दलित और स्त्रियों के लिए आगाज है।

संदर्भ :-

१) विद्रोहीनी (कविता) सुशीला टाकभोरे
२) हमारे हिस्से का सूरज (कविता) सुशीला टाकभोरे
३) दलितों का मर्सिहा (कविता) सुशीला टाकभोरे
४) हम दलित, यह तुम भी जाने (कविता) सुशीला टाकभोरे